स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—माधव १४, वार—गर्भोदशायी, शुक्रवार, २९ पौष, सम्वत् २०२८, १४ जनवरी, १९७२ | संख्या ८

जनवरी १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीनृगराजस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।६४।२५-२९)

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥२५॥

श्रीनृगराजने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की—

हे केशव ! मैं ब्रह्मण्यगुणयुक्त वदान्य एवं आपके दर्शनार्थी दास होने के कारण अब तक मेरी पूर्वस्मृति विलुप्त नहीं हुई है ॥२५॥

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥

हे विभो ! योगेश्वर लोग उपनिषद्रूप नेत्र द्वारा विमल हृदयके अन्दर जिनकी चिन्ता करते हैं, वे ही अधोक्षज परमात्मारूपी आप किस प्रकार मेरे साक्षात् नयनगोचर हुए हैं, यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ । इस जगत्में जिनकी संसार-दशा का नाश होता है, आप

उन्हींके प्रत्यक्षीभूत हुआ करते हैं; परन्तु गुरुतर दुःखके कारण अन्धबुद्धिको प्राप्त मुझ जैसे व्यक्तिके लिए आपका दर्शन अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥२६॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

हे देवदेव ! जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, श्रीकृष्ण ! हे प्रभो ! आप अब मुझे अनुमति प्रदान करें, मैं स्वर्गलोकमें गमन रहा हूँ । मैं जहाँ भी वर्त्तमान क्यों न रहूँ, वहाँ भी मेरा चित्त आपकी पादपद्म-चिन्तामें ही सर्वदा आसक्त रहे ॥२७-२८॥

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥

आप समस्त भूतोंके उत्पत्ति-कारण हैं । तथापि निर्विकार और अनन्त शक्तिसम्पन्न योगेश्वर वासुदेव श्रीकृष्ण ! आपको मैं पुनः पुनः प्रणाम कर रहा हूँ ॥२९॥

॥ इति श्रीनृगराजस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति श्रीनृगराजका श्रीकृष्ण स्तोत्र समाप्त ॥

मनको चेतावनी

मन-वच-क्रम मन, गोविन्द सुधि करि ।
सुचि रुचि सहज समाधि साधि सठ ! दीनबन्धु करुनामय उर धरि ॥
मिथ्या बाद-विबाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहि परिहरि ।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तर हरि ॥
बेदनि कह्यौ, सुमृतिहूँ भाष्यौ, पावन पतित नाम निज नरहरि ।
जाकौ सुजस सुनत अरु गावत, जैहै पाप-वृंद भजि भरहरि ॥
परम उदार, स्याम घन सुंदर, सुखदायक, संतत हितकर हरि ।
दीनदयाल, गुपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि ॥
अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यौं घेरि रह्यौ घट घरहरि ।
जब जम-जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि ॥
अजहूँ चेति मूढ़, चहु दिसि तैं उपजी काल अगिनि झर-झरहरि ।
सूर काल बल ब्याल ग्रसत है, श्रीपति-सरन परत किन फरहरि ॥

(सूरदासजी)

श्रीगौरांग

परमेश्वर तत्त्वके मूलवस्तु अनादि-सच्चिदानन्दविग्रह गोविन्द ही श्रीगौरांग हैं। श्रीगौरांगको कदापि प्रकृति स्पर्श नहीं करसकती। वे अप्राकृत स्वयं श्रीकृष्ण हैं। प्रकृति-स्पृष्टवस्तु कालद्वारा विनाशयोग्य, आधार-सापेक्ष और सीमाबद्ध है। श्रीगौरसुन्दर नित्य, शक्तिमान् एवं वैकुण्ठ हैं। हे पाठकगण! आप लोग श्रीमन्महाप्रभुको मायाके साथ ऐक्य करनेकी चेष्टा नहीं करें। जहाँ माया वर्तमान है, वहाँ श्रीगौरसुन्दर नहीं हैं।

श्रीरूपानुग वैष्णवोंके एकमात्र परमाराध्य वस्तु श्रीगौरसुन्दर हैं। अभक्तिमार्गाश्रित दूसरे व्यक्तिके द्वारा रूपान्तरित या चित्रित होनेपर अथवा किसी व्यक्तिद्वारा माया मिलाकर उन्हें विकारी प्रतिपन्न करनेपर ऐसे अभक्तकी कल्पनाके आनुगत्यको विजातीय जानकर शुद्धभक्त लोग उसका परित्याग करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी प्रकट-लीलामें इस प्रकारकी एक घटना श्रीचैतन्य-चरितामृतकी अन्त्यलीला ५म परिच्छेदमें वर्णित है। एक बंगदेशीय विप्रने अपने क्षुद्र पाण्डित्य-प्रतिभाके बलपर गौरभक्तोंमें प्रतिष्ठा-प्राप्तिके लिये जो कुचेष्टा की थी, उसे श्रीपाद दामोदर स्वरूपजीने विफल कर दिया। उन्होंने उस विप्रको अन्तमें यह परामर्श दिया—

जाह भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने।
एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे॥
चैतन्येर भक्तगणेर नित्य कर संग।
तबे जानिबा सिद्धान्तसमुद्र-तरंग॥

(चै० च० अ० ली० ५म प०)

अर्थात् भागवतका अध्ययन वैष्णवोंके स्थानमें करो एवं एकान्त रूपसे श्रीचैतन्यदेवका चरणाश्रय ग्रहण करो। श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंका नित्य संग करो। तब तुम सिद्धान्त-समुद्रके तरंगोंको या शास्त्रोंके सार-सिद्धान्तोंको जान सकोगे।

गौर-भक्तसमाजमें उक्त पूर्व-बंगवासी कविकी तरह गौरभक्त सजकर बहुतसे अभक्त लोग समय-समयमें हुए हैं। उनका अन्यायाचरण 'गौरभक्ति' नहीं है—यह दिखलानेके लिये श्रीगौरसुन्दरने नित्य शुद्धभक्त निजजनोंको प्रेरण किया है। उस शुद्धभक्तिस्वरूपसे विपथगामी न होकर जो व्यक्ति उसे ग्रहण करनेके लिये प्रस्तुत होते हैं, वे ही श्रीमहाप्रभुकी दया प्राप्त करते हैं।

श्रीगौरसुन्दरका दर्शनकर स्तुति करते हुए श्रीरूप गोस्वामीने सविनय दोनों हाथ जोड़कर सदैन्य कहा था—"गौरकान्तिधारी कृष्ण-चैतन्य-नामक कृष्ण, तुम्हें नमस्कार है। आप गौरांग महावदान्य एवं कृष्णप्रेम-प्रदाता हैं।" इस स्तवमें गौरांग क्या वस्तु हैं और उनके साथ जीवका क्या प्रयोजन है एवं प्रयोजन-सिद्धिका उपाय क्या है, इस गौरवस्तु विषयक सम्बन्धाभिधेय-प्रयोजन तत्त्वत्रयका वर्णन किया गया है। श्रीगौरांग स्वयं कृष्ण हैं। उनका नाम श्रीकृष्णचैतन्य है।

श्रीकृष्ण जानाये सब विश्व कैल धन्य।

(चै० च० आ० ३।३४)

कृष्ण एइ दुइ वर्ण सदा जार मुखे।
अथवा कृष्णके तिहों वर्णेन निज-सुखे॥
(चै०च० आ० ३।५३)
देह कान्त्ये हय तिहों अकृष्ण वरण।
अकृष्ण वरणे कहे पीत वरण॥
(चै० च० आ० ३।५६)

पाठकगण ! आप लोगोंने श्रीगौरांगका नाम और रूप जान लिया। अभी उनके गुणों का श्रवण करें। वे महावदान्य हैं। माधुर्यरस-विग्रह कृष्ण होने पर भी वे माधुर्यरस-विग्रह के प्रदाता होकर दयागुण-धारी हैं। पात्रापात्र विचार न कर सुदुर्लभ कृष्ण-मधुरिमा जगत को उन्होंने प्रदान की है। साधारण लोग प्राकृत, हेय, खण्डित, कालक्षुब्ध, आगमपायी वस्तु प्रदान करते हैं। गौरहरि ऐसी मायिक वस्तुके प्रदाता नहीं हैं, वे उपादेय नित्य-कृष्ण प्रेम प्रदाता हैं।

चैतन्यचन्द्रेर दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पावे चमत्कार॥
(चै० च० आ० ८।१५)

अन्यान्य दाताओंके दान-समूहमें कृपणता है, किन्तु दयानिधि श्रीगौरसुन्दरके दानमें ऐसी कुण्ठता या सीमित भाव नहीं है। ऐसे गुणधर पुरुषकी दातृत्व-शक्तिकी तुलना चौदह भुवनमें या वैकुण्ठमें भी नहीं मिल सकती। श्रीलदामोदरस्वरूप गोस्वामीने कहा है—दूसरों की दयामें अमंगलका उदय होता है, किन्तु श्रीगौरहरिकी दया अमन्दोदया-दया अर्थात् कृष्णमें प्रेमभक्ति उदय कराती है। फल्गु चतुर्वर्ग-प्रदायिनी दया कदापि गौरकृपाके साथ तुलना करने योग्य नहीं है। उस कृष्णभक्ति-स्वरूपा गौर-दया छोड़कर अपने-विपाक क्रमसे भ्रममय-मार्गमें जो व्यक्ति विचरण करते हैं, वे भक्तिविमुख जीव हैं। सुकोमला भक्तिके अभावमें उनका हृदय कठिन अश्मसारमय है। अधनको 'धन' समझकर उसके प्रति यत्न कर जो व्यक्ति गौर-सेवासे विमुख होते हैं, ऐसे भाग्यहीन आत्मवंचक कदापि प्रेमरत्न-लाभमें कृतकार्य नहीं होते।

श्रीगौरसुन्दर का नाम—श्रीकृष्णचैतन्य है, उनका रूप - श्रीगौरांग है, एवं उनका गुण—महावदान्य है। उनकी लीलाकी बात सुनें—वे कृष्ण-प्रेमप्रदाता हैं। स्वयं कृष्ण होकर अपने आपको आस्वादन करनेके उद्देश्य से कृष्णभक्त हैं। वदान्यता गुणद्वारा कृष्ण-भक्तिके प्रचारक हैं। सेव्य-वस्तु होने पर भी सेवकोंको लेकर कृष्ण-भक्तिका प्रचार ही उनकी लीला है। प्राकृत वस्तुमात्रमें नाम, रूप, गुण एवं क्रिया - इन चारोंमें भेद वर्त्तमान है। किन्तु श्रीगौरसुन्दर अप्राकृत वस्तु और अद्वयज्ञान श्रीव्रजेन्द्रनन्दन होनेके कारण उनमें ये चारों बातें अभिन्न रूपसे अवस्थित हैं। दूसरोंकी मायिक धारणाका आधिक्य उनको बढ़ा या घटा नहीं सकता। उनके नाम-रूप-गुण-लीलामें कोई भी परि-वर्द्धन, परिवर्त्तन, परिवर्जन करनेमें कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है। श्रीरूपानुग होनेपर ही श्रीगौरसुन्दरकी महिमा जीवके सोये हुए हृदयमें प्रकटित होगी। कृष्णचैतन्य-नाम ही सम्बन्ध है, गौर-कृपा कृष्णभक्ति ही अभिधेय एवं गौर-देय कृष्णप्रेम ही प्रयोजन है। भगवत् रूप-विमुख होनेपर जीव निर्विशेष मायावाद या मायाशक्तिके अन्तर्भुक्त करनेकी चेष्टाको जाग्रत कर गौर-विमुख होंगे। श्रीरूपानुग-पथ त्याग करनेके कारण बाउल, कर्ताभजा, नेड़ा, विषयी, दरवेश, सांइ, रसिक, किशोरी-भजन, सहजिया, जाति-

गोसाई, साहित्यिक, नागरी आदि असंख्य मतवाद विषयके अन्तरालमें उदित होकर भक्तिके प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं। अतएव हे शुद्धभक्त पाठक वर्ग ! श्रीगौरसुन्दरके भक्ति प्रचारके सर्वप्रधान सहायक श्रीरूप-गोस्वामी प्रभुके ग्रन्थोंका पाठ करें, जिससे सभी प्रकार से मंगल होगा। श्रीरूप गोस्वामीका अतिक्रम कर जो कुछ कार्य भी करने जायेंगे, वे सभी कार्य ही आप लोगोंका अमंगल उत्पादन करेंगे। साधन भक्तिकी मूल-वस्तु श्रद्धा है। भावभक्ति की मूल-वस्तु रति है, प्रेम-भक्तिकी मूल-वस्तु रस है। भक्तिके इन त्रिविध अवस्थानोंकी बात कदापि न भूलेंगे। श्रीगौरसुन्दर द्वारा उपदिष्ट, श्रीरूप-गोस्वामी द्वारा कथित भक्तिरस समझने की इच्छा हो, तो शुद्ध-भक्तिमय जीवन गठन करें। श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरद्वारा अनुसृत श्रीरूपानुग-पद्धतिके साथ दूसरे व्यक्तियोंके मतवादोंका पार्थक्य समझनेकी चेष्टारूप साधुसंग करें. निश्चय ही आप लोग शुद्धभक्तिमार्गमें प्रविष्ट होंगे।

श्रीरूपानुगप्रवर ठाकुर श्रील भक्तिविनोद ने जगतमें जिस प्रकारसे आचार और प्रचार किया है, उसका आश्रय ग्रहण करने पर कदापि किसी वंचक-दलमें प्रवेश कर उनके निकट प्रतिष्ठा पानेके लिए भक्तिके नामसे अन्य कोई बात नहीं सीखनी पड़ेगी। अप्राकृत प्रेममय श्रीगौरसुन्दरको मायिक बुद्धिसे गठित कोई द्रव्य नहीं समझना होगा।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(रस कीर्त्तन)

१—कृष्ण-लीला गान करनेकी क्या प्रणाली है ?

"गौरचन्द्रका लीला-गीत ही सर्वप्रथम गान करना उचित है। विशेषकर साधुओंकी यही प्रथा है कि गौरचन्द्रका लीला-गान न कर वे लोग श्रीकृष्ण-लीलाका गान नहीं करते।"

'समालोचना' स० तो० २।६

२—साधकोंके लिये किस प्रकारका संगीत श्रवण करना उचित है ?

"जो संगीत केवल इन्द्रिय-तृप्तिको उद्देश नहीं करता, किन्तु भगवानकी लीला-वर्णनके द्वारा भक्ति-वृत्तिका अनुशीलन करता है, केवल ऐसे ही संगीत-वाद्यादि श्रवण करना चाहिये। जो संगीत सामान्य कर्णेन्द्रिय और विषयाभिभूत चित्तका विषयराग मात्र समृद्धि करता है, उसे दूरसे ही परित्याग करना चाहिये।"

—चै० शि० ३।२

३—गौड़ीय वैष्णवोंमें संगीतका परिपाट्य कबसे आरम्भ हुआ है ?

"श्री श्रीनिवास-आचार्य प्रभुके समयसे ही गानका परिपाट्य प्रारम्भ हुआ। श्रीवृन्दावनमें श्रीनिवास-आचार्य, श्रीनरोत्तम दास एवं श्रीश्यामानन्द—ये तीनों महात्माओं ने कुछ दिनों तक श्रीजीव गोस्वामी प्रभुके शिक्षा-शिष्य रूपसे अवस्थिति की थी। श्रीजीव गोस्वामीके अनुमोदनसे इन महापुरुषोंने कीर्त्तन-पद्धतिकी व्यवस्था की। तीनों महात्मा ही संगीत-शास्त्रमें महामहोपाध्याय थे। दिल्लीके कालोयाति विद्यामें तीनों सज्जन ही पारदर्शी थे। तीनों ही परस्पर एकाशय, एकप्राण एवं हृदय-बन्धु थे।"

—'भक्तिसिद्धान्तविरुद्ध ओ रसाभास', स० तो० ६।२

४—'मनोहरसाही', 'गराणहाटि', और 'रेणेटी' गानका प्रचलन कबसे प्रारम्भ हुआ है ?

"श्री श्रीनिवास-आचार्यने काटोया-प्रदेश को उज्ज्वल किया था। उनका प्रदेश मनोहरसाही परगनेके अन्तर्गत है। इसलिये उनकी प्रवर्त्तित गान-पद्धतिका नाम 'मनोहरसाही' गान है। श्रीनरोत्तमदास राजशाही जिलाके गराणहाटि या गड़ेर हाट परगनेके अन्तर्गत खेतुरी ग्रामके अधिवासी थे। इसलिए उनकी प्रवर्त्तित गान-पद्धतिका नाम 'गराणहाटि' गान है। श्रीश्यामानन्द मेदिनीपुर जिलेके अधिवासी थे। उनके द्वारा प्रवर्त्तित गीत-पद्धतिको 'रेणेटी' गान कहा जाता है। श्रीजीव गोस्वामीने गानाचार्योंको उत्साह देनेके लिए श्रीनिवास आचार्यको 'प्रभु' पद, श्रीनरोत्तमदास को 'ठाकुर' पद और श्रीश्यामानन्दजीको 'प्रभु' पद दिया था।"

—'भक्तिसिद्धान्तविरुद्ध ओ रसाभास' स० तो० ६।२

३—महाजन-पदमें अनभिज्ञ व्यक्तिके अक्षर संयोग करना क्यों अनुचित है ?

"महाजनोंके वाक्यमें रसाभास और वैष्णव-विरुद्ध सिद्धान्त नहीं है। अरसज्ञ व्यक्ति या गायकद्वारा अक्षर संयुक्त करने पर रसाभास और सिद्धान्त-विरुद्ध बात हो पड़ती है।"

—भक्तिसिद्धान्तविरुद्ध ओ रसाभास' स० तो० ६।२

६—रस-कीर्त्तन-व्यवसायीका मूल्य क्या है और उनका कीर्त्तन क्या वैष्णवोंके लिए श्रोतव्य है ?

"ये लोग (व्यवसायी लीला-रस गायक लोग) सभी ही केवल नाममात्रके रसिक हैं। वे लोग रसबोध-शून्य एवं वैष्णव-सिद्धान्त-विरुद्ध भाषी हैं। उन लोगोंके गानमें राग-रागिनी, रंग-ढङ्ग आदि यथेष्ट होनेपर भी वैष्णवोंका श्रोतव्य उसमें कुछ भी नहीं है। वे लोग समागत महिलाओं एवं मूर्ख लोगोंका चित्त-रंजन करनेके लिए इतना अक्षर जोड़ते हैं कि महाजनका पद कहाँ है, यह जाना नहीं जाता। मूर्ख लोग वाह-वाही, अर्थ इत्यादि प्रदान करते हैं। इसलिए वे गायक लोग अहंकारसे परिपूर्ण हैं।"

—'भक्तिसिद्धान्तविरुद्धओ रसाभास,' स० तो० ६।२

७—श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने अनधिकारीके लिए जो रसकीर्त्तन निषिद्ध है, इस विषयमें कैसी तीव्र उक्ति की है ?

"जगतमें अधिकांश मनुष्य ही मायाद्वारा विकृत हैं। वे लोग रंग-ढंग को पसन्द करते हैं, प्रकृत भजनका नाम लेकर यथेच्छाचार किया करते हैं। जब तक यह कुपन्था स्थगित न होगी, तब तक शृंगार-रसका गांभीर्य न रहेगा। हे भक्तवृन्द! स्वार्थपर गायक और जड़ानन्दपर श्रोताओंकी सभामें जाकर आप लोग रस-गान श्रवण नहीं करें। श्राद्ध-सभा तो दूर रहे, वैष्णवोंके स्थानमें भी यह पद्धति जिससे न रहे, इसके लिए यत्न करें। जहाँ सर्वप्रकारके अधिकारी उपस्थित हों, वहाँ नाम, प्रार्थना एवं दास्य-रसका गान करना ही उचित है। जहाँ अमिश्र शुद्ध रसिक वैष्णवमात्र उपस्थित हों, वहाँ रस-गान श्रवण करें एवं रस-गान श्रवण-समयमें अपने-अपने स्वरूपोचित-भजनभावका अनुभव करें। इससे यदि गान-पद्धति उठ जाय तो कोई हानि नहीं है। उससे भी वैष्णवों का मंगल ही होगा। अर्थ-लोभसे और इन्द्रिय सुखकी प्रत्याशासे जहां-तहाँ रस-गानकी प्रथा रहने देना नितान्त कलिका कार्य है।"

—'भक्तिसिद्धान्तविरुद्ध ओ रसाभास', स० तो० ६।२

८—देहारामी व्यक्ति अप्राकृत-लीलाकी कथाके श्रवणसे क्या गति प्राप्त करते हैं?

"जो सभी व्यक्ति स्थूल देहगत सुखका बहुत अधिक आदर करते हुए चिन्मय-देहगत इन सभी आनन्द-वैचित्र्यके बारेमें अवगत नहीं हुए हैं, वे लोग इन सभी बातोंके प्रति दृष्टिपात, मनन और आलोचना नहीं करेंगे क्योंकि ऐसा करने पर इन सभी वर्णनाओंको मांस-चर्मगत क्रियामात्र समझकर अश्लील कहकर निन्दा करेंगे, नहीं तो आदर करते हुए सहजिया भावके अधीन होकर अधःपतन लाभ करेंगे।"

—चै० शि० ७।७

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

नवीन-ग्रंथ

श्रीचैतन्य महाप्रभुके

स्वयंभगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण

संग्रहकर्त्ता— त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज।

संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज।

श्री चैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ता सम्बन्धी वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत और पांचरात्र आदि विभिन्न शास्त्रोंके प्रमाणोंका अभूतपूर्व संग्रह। इसमें संस्कृतके पद्यों एवं गद्यों का सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी साथ-साथ दिया गया है।

सोलह पेजी २० × ३० आकारके ७६ पृष्ठोंकी पुस्तक। उत्तम कागजपर सुन्दर छपाई। मूल्य केवल १) रुपया। श्रद्धालु पाठक इस ग्रन्थरत्नका अवश्य ही संग्रह करें।

मँगाने का पता—श्रीभागवत पत्रिका कार्यालय, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो०—मथुरा (उ प्र०)

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ—१७)

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥
(गी० ६।४६-४७)

भक्तियोगयुक्त व्यक्ति तपस्वी, ज्ञानी और कर्मीकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है । अतएव हे अर्जुन ! तुम भक्तियोगी बनो । जो व्यक्ति मुझमें आसक्तचित्त होकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे ही मेरे मतानुसार युक्ततम अर्थात् सभी योगियोंसे भी श्रेष्ठ हैं ।

इस प्रकार सर्वत्र ही अभक्तिका निन्दावाद सुना जाता है । अतएव सभी उपायोंमें भगवद्भक्तिकी ही नित्यता एवं श्रेष्ठता सिद्ध हुई । इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवजीके प्रति कहा है—

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥
ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ॥
गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥
(भा० ११।१८।४२-४३)

संन्यासीका धर्म है—शम और अहिंसा, वानप्रस्थका धर्म है—तपस्या और आत्मानात्म-विवेक, गृहस्थका धर्म—भूतरक्षा एवं पंचयज्ञानुष्ठान है एवं गुरुसेवा ही ब्रह्मचारीका प्रधान धर्म है, यह जानना होगा । भार्याके ऋतुकालको छोड़कर दूसरे समयमें ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष और सभी भूतोंके प्रति मैत्री ही गृहस्थका धर्म है । परन्तु मेरी (भगवानकी) आराधना ही सभी वर्णाश्रमी जीवोंका एकमात्र नित्य-धर्म है । इसलिए यह सभीका कर्त्तव्य है ।

श्रीनारदने भी युधिष्ठिर महाराजके निकट कहा है—

श्रवणं कीर्त्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥
(भा० ७।११।११-१२)

महतों (वैष्णवों) के आश्रयमें भगवानके गुणकर्मादि श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, भगवत्सेवा, पूजा, अवनति (वन्दन), दास्य, सख्य, आत्मसमर्पण आदि मनुष्यमात्रका ही परम धर्म है । इन सभीके द्वारा ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं । तीसगुणोंमें अवशिष्ट सत्य, दया, तपस्या, पवित्रता, सहनशीलता, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, वेदपाठ, सरलता, सन्तोष, समदर्शन, ग्राम्यचेष्टा-त्याग अर्थात् काम्यकर्म-त्याग, मनुष्योंके अभिमानपूर्ण कार्य निष्फल हैं—ऐसा देखना, मौन (वृथा वाक्यालाप-वर्जन), आत्मज्ञान, प्राणियोंमें यथायोग्य अन्नादि का विभाग, सभी प्राणियोंमें ईश्वर-

सम्बन्धका दर्शन, सभी मनुष्योंमें भी ऐसी ही बुद्धि एवं महत् व्यक्तियोंके आश्रयमें नवधाभक्ति आदि ।

महाभारतमें भी लिखा गया है—

मातृवत् परिरक्षन्त सृष्टिसंहारकारकम् ।
यो नार्चयति देवेशं तं विद्याद्ब्रह्मघातकम् ॥

जो व्यक्ति माताकी तरह सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले, जो जगतकी सृष्टि एवं संहारकारी हैं ऐसे सर्वदेवेश्वर श्रीहरिका भजन नहीं करता, उसे ब्रह्मघातक जानना होगा ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा गया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥
(गीता० ७।१५)

दुष्कृतिपरायण विवेकहीन मूढ़ नराधम व्यक्ति मायाद्वारा नष्टज्ञान होकर आसुर स्वभाव आश्रयपूर्वक मेरा भजन नहीं करते ।

अग्निपुराण और विष्णुधर्ममें भी कहा गया है—

द्विविधो भूतसर्गोऽयं दैव आसुर एव च ।
विष्णुभक्तिपरो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः ॥

प्राणियोंकी सृष्टि दो प्रकारकी है—दैव और आसुर । उनमेंसे जो विष्णुभक्तिपरायण हैं, वे ही दैवीसृष्टि और जो लोग इसके विपरीत हैं, अर्थात् जो लोग विष्णुविरोधी हैं, वे लोग आसुरीसृष्टिके अन्तर्गत हैं ।

श्रीमद्भागवतमें प्रह्लादजीने भी कहा है—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ।
(भा० ७।६।१०)

भगवान् पद्मनाभके पादपद्मविमुख द्वादश-गुणयुक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा श्वपच-कुलोद्भूत हरिभक्तिपरायण व्यक्तिको ही श्रेष्ठ समझता हूँ ।

गरुड़-पुराणमें भी कहा गया है—

अन्तर्गतोऽपि वेदानां सर्वशास्त्रार्थवेद्यपि ।
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात् पुरुषाधमम् ॥

वेदसमूहमें पारङ्गत एवं सर्वशास्त्रार्थवित् होकर भी जो व्यक्ति सर्वेश्वर श्रीहरिका भक्त नहीं है, उसे पुरुषाधम जानना चाहिये ।

बृहन्नारदीय-पुराणमें भी कहा गया है—

हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा ।
द्विजगोद्वेषिणश्चापि राक्षसाः परिकीर्त्तिताः ॥

हरिपूजाविहीन, वेदविद्वेषी एवं द्विज तथा गोद्वेषी व्यक्ति भी 'राक्षस' कहलाने योग्य हैं ।

देवकी-गर्भस्थ श्रीकृष्णके प्रति देवताओंका भी कथन है—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥
(भा० १०।२।३२

हे पद्मपलाशलोचन ! जो लोग आपकी चरण-सेवाका अनादर कर अपनेको 'मुक्त' समझनेका अभिमान करते हैं, आपके प्रति भक्तिका अभाव होनेके कारण उनकी बुद्धि शुद्धा नहीं है । पुनः बहुत जन्मोंकी तपस्याके

फलसे वे लोग जीवन्मुक्तदशामें आरोहण करके भी उससे अधःपतित होते हैं।

स्वयं भगवान्‌ने अपने मुखसे कहा है—

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥
(भा० ११।१४।२२)

सत्य और दयादिसमन्वित दानयज्ञादि, वैराग्य या तपस्यायुक्त विद्या मेरे प्रति प्रीति या भक्तिशून्य चित्तको कदापि सम्यक् प्रकार से पवित्र नहीं कर सकती। कोई कोई ज्ञानमार्गका आश्रय ग्रहणकर अपनेको विमुक्त समझनेका अभिमान करते हैं। स्थूल-सूक्ष्म देहद्वयके अतिरिक्त रूपसे आत्माको समझते है। किन्तु 'अव्यक्तासक्त व्यक्तियोंकी सिद्धि-प्राप्तिमें क्लेश ही प्राप्त होता है'—गीताके इस कथनानुसार वे लोग अत्यन्त कष्टसे जीवन्मुक्तिरूप दशा प्राप्त करने पर भी श्रीभगवद्भजन न करनेके कारण भगवद्पादपद्मको अग्राह्य कर अधःपतित होते हैं।

ब्रह्माने भी कहा है—

'योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्-प्रसङ्गैः।'
(भा० ३।९।४)

केवल नरकगामी निरीश्वर कुतर्कनिष्ठ व्यक्ति ही भगवत्-पादपद्मका अनादर करते हैं।

किसी किसी स्थलमें जीवन्मुक्त व्यक्ति भी (भगवद्भक्ति परित्याग करनेपर) संसार-वासना प्राप्त करते हैं। किन्तु भगवत्परायण भक्तियोगी लोग कदापि कर्मद्वारा संसारमें लिप्त नहीं होते—

जीवन्मुक्ताः प्रपद्यन्ते क्वचित् संसारवासनाम्।
योगिनो वै न लिप्यन्ते कर्मभिर्भगवत्पराः॥

जीवन्मुक्त व्यक्ति भी यदि अचिन्त्य महाशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीहरिके निकट अपराधी हों, वे कर्मफलसे पुनः बन्धन प्राप्त होते हैं—

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः।
यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥

अतएव श्रीहरिभक्ति सभीके लिए परम कर्त्तव्य है, यही सिद्धान्त अति सुन्दर रूपसे निरूपित हुआ। भगवत्-प्रीतिके प्रभावसे कर्मवासना निराकृत होने पर भक्तिका अनुष्ठान होता है।

यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥
(भा० ११।१४।२५)

बद्धजीवोंको लक्ष्य कर भगवान् कहते हैं—जिस प्रकार आग द्वारा उत्तप्त होकर ही सोना अपना अन्तर्मल परित्याग कर अपने स्वरूपको प्राप्त करता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोगके प्रभावसे कर्मवासनारूप मल परित्याग कर जीवात्मा मेरे धाममें मेरा सेवाधिकार प्राप्त करता है।

स्कन्द पुराणके रेवाखण्डमें—

इन्द्रो महेश्वरो ब्रह्मा परं ब्रह्म तदैव हि।
श्वपचोऽपि भवत्येव यदा तुष्टोऽसि केशव॥
श्वपचादपकृष्टत्वं ब्रह्मशानादयः सुराः।
तदैवाच्युत यान्त्येते यदैव त्वं पराङ्मुखः॥

हे केशव! जब तुम प्रसन्न होते हो, उस समय तुरन्त ही चण्डाल व्यक्ति भी इन्द्र, महेश्वर, ब्रह्मा या परब्रह्म की तरह पूज्य हो जाता है। और हे अच्युत! जब तुम ही

विमुख (अप्रसन्न) हो जाते हो, तब ब्रह्मा और ईशानादि देवता लोग चण्डालसे भी अपकृष्टत्व प्राप्त करते हैं ।

देवहूतिके प्रति भगवान् कपिलदेवने भी कहा है—

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥
(भा० ३।२८।२२)

जो चरणप्रक्षालननिःसृता सरिद्वरा गंगा के पवित्र जलको मस्तकमें धारण कर साक्षात् शिव भी मंगलमय हुए हैं, जो व्यक्ति उस चरणका ध्यान करते हैं, वज्रनिक्षेप फलसे पर्वतकी दशाकी तरह उनके कल्मष या कलुषराशि समस्त ही ध्वंस प्राप्त होती है । अतएव उस श्रीहरिके पादपद्मका ही नित्यकाल ध्यान करना चाहिए ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

आनन्दकी अवधि

यहई मन ! आनंद अवधि सब ।
निरखि सरूप बिबेक-नयन भरि, या सुख तें नहि और कछु अब ॥
चित चकोर-गति करि अतिसय रति तजि स्रम सघन बिषय लोभा ।
चिति चरन मृदु चारु नंद-नख, चलत चिन्ह चहुँ दिसि सोभा ॥
जानु सुजघन करभ-कर-आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै ।
हृद बिध नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय भाजै ॥
उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं ॥
कनक-बलय, मुद्रिका मोक्षप्रद, सदा सुभग संतनि काजैं ॥
उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु भँवरी भ्रम कौं नासै ।
तड़ित बसन घन-स्याम सहस तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै ॥
परम रुचिर मनि कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी ।
बिधु मुख, मृदु मुसुक्यानि अमृत सम, सकल लोक-लोचन प्यारी ॥
सत्य-सील-संपन्न सुमूरति, सुर-नर-मुनि-भक्तनि भावै ।
अंग-अंग प्रति छबि-तरंग-गति सूरदास क्यों कहि आवै ॥

(सूरदासजी)

महाभागवतवर वृत्रासुर

(वर्ष १७, संख्या ५-६, पृष्ठ १२० से आगे)

वृत्रासुर तमःप्रवृत्तिका होने पर भी भगवान्‌का अनन्य उपासक था। उसे जितनी प्रभुकी भक्ति प्यारी थी, वैसी अन्य वस्तुएँ नहीं। देह और सांसारिक वस्तुओंसे ममत्व का परित्याग कर वह आत्मनिष्ठ हो गया था। ऐसे उस प्रभु-प्रेमी का पूर्व-वृत्तान्त पहले ही वर्णित हो चुका है। अब हम उसके उत्तर-वृत्तान्तका पठन-मनन कर अपनेको पवित्र करनेका प्रयास करें।

जब इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध कर दिया, तब त्वष्टाने क्रुद्ध होकर इन्द्र-वध के लिए अन्वाहार्य-पचन नामक दक्षिणाग्निमें हवन किया। यज्ञकी समाप्तिपर उस यज्ञ-कुण्डसे एक विकराल आकृतियुक्त महादैत्य प्रकट हुआ। यही हमारे पूर्वपरिचित महाराज चित्रकेतु थे, जो इस शरीर को प्राप्त हुए थे। उस महादैत्यको देखनेसे ऐसा जान पड़ता कि मानो समस्त लोकोंका नाश करनेके लिए प्रलयकालीन काल ही प्रकट हुआ हो।

वह दैत्य उत्पन्न होनेके अनन्तर दिन-प्रतिदिन अपने शरीरके सब ओरसे बढ़ने लगा। वह जलते हुए पर्वतके समान काला और विशाल शरीरवाला था। उसके शरीरसे सन्ध्याकालीन बादलोंकी सी कान्ति निकलती रहती थी। उसके सिरके केश दाढ़ी-मूँछ तप्तताम्रके सदृश लाल रंगके थे, नेत्र मध्याह्नकालीन सूर्यवत् प्रचण्ड थे। वह तीन नोकवाले त्रिशूलको लेकर जब नाचने-कूदने चिल्लाने लगता था, तब ऐसा जान पड़ता था कि मानो पृथ्वी काँपकर विदीर्ण हो जायगी, त्रिशूलकी नोकपर अन्तरिक्षको उठा लेगा। जंभाई लेते समय उसका मुख कन्दराके समान खुल जाता था। उस समय वह आकाशको निगलता-सा जान पड़ता था, जीभसे नक्षत्रों को चाटता हुआ-सा तथा तीनों लोकोंको भक्षण करता-सा जान पड़ता था। उसके भयानक रूपसे सभी लोग घबड़ाकर यहाँ-वहाँ भागने लगते थे। त्वष्टाके तमोगुणी पुत्रने सारे लोकोंको घेर लिया था। इसीसे उसका नाम वृत्रासुर हुआ।

बड़े-बड़े देवता अपने अनुयायियोंके साथ उसपर एक साथ ही टूट पड़े और अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु वृत्रासुर उन सब अस्त्र-शस्त्रों को ग्रास कर जाता था। इससे देवता लोग आश्चर्यचकित हो गये और अपनेको हतप्रभ देखकर दीनहीन एवं उदास होकर भगवान् नारायणकी शरणमें जाकर इस प्रकार उनसे कहने लगे—

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका
ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ
बिभेति यस्मादरणं ततो नः॥

(भा० ६।९।२१)

वायु, आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी—ये पाँचों भूत, इनसे बने हुए तीनों लोक, उनके अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब देवता जिस कालसे डर जाते हैं और उसे पूजा-सामग्री, भेंट चढ़ाते हैं, वही काल आपसे डरता है । इसलिए आप भगवान् ही हमारे रक्षक हैं ।

आप पूर्णकाम हैं । आपके लिए कोई विस्मयजनक स्थिति नहीं है, अतएव आप ही हमारे शरण्य हैं । जो व्यक्ति आपको छोड़कर दूसरेका शरण लेता है, वह मूर्ख है तथा कुत्ते के पूँछको पकड़कर समुद्र पार करना चाहता है । हे नाथ ! जब हम देवता शत्रुओंसे पीड़ित हुए, तब-तब वास्तवमें निर्विकार रहने पर भी अनेक अवतार धारण कर और अपना समझ कर युग-युगमें आपने हमारी रक्षा की है ।

तमेव देवं वयमात्मदैवतं
पर प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं
स्वानां सा नो धास्यति शं महात्मा ॥
(भा० ६।९।२७)

वे आपही सबके आत्मा और परमाराध्य-देव हैं । प्रकृति और पुरुषरूपसे विश्वके कारण हैं । विश्वसे पृथक् रूपसे भी हैं और विश्वरूप हैं । हम सभी शरणागतवत्सल भगवान् श्रीहरि आपकी शरण ग्रहण करते हैं । उदारशिरोमणि प्रभु आप अवश्य ही अपने निजजन समझ हम देवताओंका कल्याण करें ।

इस प्रकार जब देवताओंने भगवान् की स्तुति की, तो स्वयं भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारण कर सबके बीचमें प्रकट हुए । इस समय उनकी शोभा अपूर्व थी । उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान विकसित थे, पार्षद उनकी सेवामें लग्न थे, भगवान् के वक्षस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न था और गलेमें कौस्तुभ मणि शोभा पा रही थी ।

भगवान्के दर्शन कर सभी देवता आनन्द विह्वल हो गये । उन सबने पृथ्वी पर लोट कर साष्टांग दण्डवत् की और धीरे-धीरे वे लोग भगवान् की स्तुति करने लगे—

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥
(भा० ६।९।३२)

यज्ञोंके द्वारा स्वर्गादि देनेकी शक्ति तथा उनके फलकी सीमा निश्चित करनेवाले काल भी आप ही हैं । और यज्ञोंमें विघ्न डालनेवाले दैत्यों को आप चक्रसे छिन्न-भिन्न करते हैं ।

इसलिए आपके नामोंकी कोई सीमा नहीं है । हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं । आप जगत्के परम कारण महापुरुष पुरुषोत्तम हैं । आप मंगलमय परम कल्याण-स्वरूप दयालु हैं । आप ही जगतके स्वामी हैं । सौन्दर्य और मृदुलताकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीजी के आप ही पति हैं । आपकी रहस्य-मयी लीलाओंको जानना बहुत ही कठिन है ।

अतएव स्वयं तदुपकल्पया स्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविध-वृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपासादिताः ॥४३॥

हे भगवन् ! हम अपना अभिप्राय प्रकट करें, इसकी अपेक्षा न रखकर जिस अभिलाषा से हम लोग यहाँ आये हैं, उसे पूर्ण कीजिए ।

आप अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न जगत्के परम गुरु हैं। हम आपके चरणकमलोंकी छत्रछायामें आये हैं, जो विविध पापोंके फलस्वरूप जन्म-मृत्यु संसारमें भटकने की थकावटको मिटाने वाली है।

अथो ईशो जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।
ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ।।
(भा० ६।९।४४)

हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! वृत्रासुरने हमारे प्रभाव और अस्त्र-शस्त्रोंको ग्रास कर लिया है। वह अब तीनों लोकोंको भी ग्रास कर रहा है। आप उसे मार डालिए।

हंसाय दहनिलयाय निरीक्षकाय
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता-
यन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ।।
(भा० ६।९।४५)

हे प्रभो ! आप शुद्धस्वरूप, हृदयस्थित शुद्ध ज्योतिर्मय आकाश, सबके साक्षी, अनादि, अनन्त और उज्ज्वल कीर्त्तिसम्पन्न हैं। संत लोग आपका ही संग्रह करते हैं। संसारके पथिक जब घूमते-घूमते आपकी शरणमें आ पहुँचते हैं, तब अन्तमें आप उन्हें परमानन्द स्वरूप अभीष्ट फल देते हैं और इस प्रकार उनके जन्म-जन्मांतरके कष्टोंको हर लेते हैं। हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं।

जब देवताओंने बड़े आदरके साथ इस प्रकार भगवान्का स्तवन किया, तब भगवान् बहुत प्रसन्न होकर उनसे इस प्रकार कहने लगे—

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा सुमदुपस्थानविद्यया ।
आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ।।
किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ।।
(भा० ६।९।४७-४८)

हे देवताओं ! तुम लोगोंने स्तुतियुक्त ज्ञानसे मेरी उपासना की है। इससे मैं तुम लोगोंपर प्रसन्न हूँ। इस स्तुतिके द्वारा जीवों को अपने वास्तविक स्वरूपकी स्मृति और मेरी भक्ति होती है। हे देवशिरोमणियों ! मेरे प्रसन्न हो जानेपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तथा मेरे अनन्य प्रेमी तत्त्ववेत्ता भक्त मुझसे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते।

जो पुरुष जगत्के विषयोंको सत्य समझता है, वह नासमझ एवं वास्तविक कल्याणका अनिच्छुक है। परन्तु यदि कोई जानकार व्यक्ति उसे उसकी इच्छित भोग-सामग्री प्रदान करता है, तो वह भी नासमझ है। जो पुरुष मुक्ति का स्वरूप जानता है, वह अज्ञानी को भी कर्मोंमें फँसनेका उपदेश नहीं देता, ठीक उसी प्रकार जैसे कि रोगीके चाहने पर भी सद्वैद्य उसे कुपथ्य नहीं देता।

मघवन् यात भद्रं वो दध्यङ्ङृषिसत्तमम् ।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ।।
स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ।
यद् वा अश्वशिरो नाम तपोरमतां व्यधात् ।।
(भा० ६।९।५१-५२)

देवराज इन्द्र ! तुम लोगोंका कल्याण हो। अब देर मत करो। ऋषि-शिरोमणि

दधीचिके पास जाओ और उनसे उनका शरीर जो उपासना, व्रत, तपस्याके कारण दृढ़ हो गया है, माँग लो । दधीचि ऋषिको शुद्ध ब्रह्म-ज्ञान है । अश्विनीकुमारोंको घोड़े के सिरसे उपदेश करनेके कारण उनका एक-नाम अश्वसिर है। उनकी उपदेश की हुई आत्मविद्याके प्रभावसे ही दोनों अश्विनी-कुमार जीवन्मुक्त हुए हैं।

दधीचि ऋषि धर्मके मर्मज्ञ हैं। वे तुम लोगोंको अश्विनीकुमारके माँगनेपर अपने शरीरके अंग अवश्य दे देंगे। इसके पश्चात् विश्वकर्माके द्वारा उन अंगोंसे एक श्रेष्ठ आयुध तैयार कर लेना। हे देवराज ! फिर मेरी शक्तिसे युक्त होकर तुम उसी शस्त्रके द्वारा उस वृत्रासुरका सिर काट लेना।

हे देवताओं ! वृत्रासुरके मारे जाने पर तुम लोगोंको फिरसे तेज, अस्त्र-शस्त्र और सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जायेंगी। तुम्हारा कल्याण अवश्यंभावी है । क्योंकि मेरे शरणागतोंको कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

भगवान् परमपिता अपने श्रीमुखसे इस प्रकारके वचन कहकर अन्तर्हित हो गये। इसके पश्चात् देवताओंने दधीचि ऋषिके पास जाकर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ऋषिसे याचना की। प्रभुकी आज्ञा सुनकर दधीचि ऋषिको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने प्रसन्न-मुद्रासे हँसते हुए देवताओंसे कहा—

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम्।
संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥
जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः।
कः उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥

(भा० ६।१०।३-४)

हे देवताओं ! आप लोगोंको संभवतः यह बात नहीं मालूम है कि मरते समय प्राणियों को बड़ा कष्ट होता है। उन्हें जब तक चेत रहता है, बड़ी असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है और अन्तमें मूर्च्छित हो जाते हैं।

जो जीव जगत्‌में जीवित रहना चाहते हैं, उनके लिए शरीर बहुत ही अनमोल, प्रियतम एवं अभीष्ट वस्तु है। ऐसी स्थितिमें स्वयं विष्णु भगवान् भी यदि जीवसे उसका शरीर माँगे, तो कौन उसे देनेका साहस करेगा ?

किं नु तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन्
पुंसां भूतानुकम्पिनाम्।
भवद्विधानां महतां
पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥

(भा० ६।१०।५)

हे ब्रह्मन् ! आप जैसे उदार और प्राणियोंपर दया करनेवाले महापुरुष जिनके कर्मोंकी बड़े-बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं, प्राणियोंकी भलाईके लिए कौन-सी वस्तु न्योछावर नहीं कर सकते ? हे भगवान् ! इसमें सन्देह नहीं कि माँगने-वाले लोग स्वार्थी होते है। उनमें देनेवालोंकी कठिनाईका विचार करने की बुद्धि नहीं होती। यदि उनमें इतना ज्ञान होता, तो वे माँगते ही क्यों ? इसी प्रकार दाता भी माँगनेवालेकी विपत्ति नहीं जानता। अन्यथा उसके मुखसे कदापि नहीं न निक-लती। इसलिए आप हमारी विपत्ति समझ-कर हमारी याचनाको पूर्ण कर यशके भागी बनिए।

ऐसा सुनकर दधीचिने कहा—हे देवताओं ! मैंने आप लोगोंके मुखसे धर्मकी बात सुननेके लिए ही आपकी याचनाके प्रति उपेक्षा दिखलाई थी। यह लीजिए, मैं अपने प्यारे शरीरको अभी छोड़ देता हूँ, क्योंकि यह एकदिन मुझे स्वयं ही छोड़नेवाला है।

जो मनुष्य इस विनाशी शरीरसे दुःखी प्राणियोंपर दया कर मुख्यतः धर्म और गौणतः यशका सम्पादन नहीं करता, वह जड़ पेड़-पौधोंसे भी गया-बीता है। बड़े-बड़े महात्माओंने इस अविनाशी धर्मकी उपासना की है। उनका स्वरूप बस, इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणीके दुःखमें दुःखका अनुभव करे और सुखमें सुखका।

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः॥
(भा० ६।१०।१०)

जगत्के धन-जन और शरीर आदि क्षणभंगुर हैं। ये अपने किसी काममें नहीं आते। अन्तमें दूसरोंके ही काम आयेंगे। ओह ! यह कैसी कृपणता है, कितने दुःखकी बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरोंका उपकार नहीं कर लेता।

इस प्रकार धर्मयुक्त बात कहते हुए अथर्ववेदी महर्षि दधीचिने ऐसा निश्चय कर अपनेको परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्के ध्यानमें स्थिर करके अपना स्थूल देह परित्याग कर दिया।

अनन्तर दधीचि ऋषिकी अस्थियोंको लाकर इन्द्रने विश्वकर्माको दी। उसने वज्र बनाकर इन्द्रको दिया। दूसरी ओर इन्द्र भगवान्की अपूर्वशक्ति सम्पन्न हो गये। फिर वे ऐरावत हाथीपर चढ़कर अपने देव, रुद्र, वसु, आदित्य, मरुद्गण आदिको साथ लेकर त्रिलोकीको हर्षित करते हुए वृत्रासुरका वध करने चले और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसपर भयानक आक्रमण किया। जब वृत्रासुरने देखा कि युद्धके लिए देवताओंने पूरी तैयारी कर ली है, तो वह भी अपने दैत्य, नमुचि, शम्बर, अनर्वा, शंकुशिरा आदि की महती सेना लेकर मोर्चेपर आ डटा।

एक ओर शक्तिसम्पन्न इन्द्र देवताओंको साथ लेकर, दूसरी ओर वृत्रासुर अपने अनेक दानवोंको लेकर संग्राममें तत्पर हो गये। परन्तु युद्धमें देवता शक्तिसम्पन्न होनेके कारण सफलता प्राप्त करने लगे, तो दूसरी ओर वृत्रासुरके अनुयायी अत्यधिक पराभव एवं असफलता प्राप्त करने लगे। असुरोंके अस्त्र-शस्त्र देवसेनाका कुछ नहीं बिगाड़ सके और न उनके वृक्षों, पत्थरों, चट्टानों, पर्वतोंके शिखरोंके प्रहार करने पर भी देवसेनाके किसी व्यक्तिके शरीरमें खरोंच ही आई।

दैत्य लोग देवताओंको पराजित करनेके लिये जो जो प्रयत्न करते, वे सबके सब निष्फल हो जाते – ठीक वैसे ही जैसे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित भक्तोंपर क्षुद्र मनुष्योंके कठोर और अमङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भगवद्विमुख असुर लोग अपने प्रयत्नको व्यर्थ होते देखकर उत्साहरहित हो गये। उनकी वीरताका घमण्ड जाता रहा। अब वे अपने सरदार वृत्रासुरको युद्धभूमिमें ही

छोड़कर भाग खड़े हुए, क्योंकि देवताओंने उनका सारा बल-पौरुष छीन लिया था।

वृत्रासुरने जब अपने असुरोंको भागते हुए और अपनी सेनाको भयभीत एवं छिन्न-भिन्न होते हुए देखा तो उसने उन्हें हँसते-हँसते पुकार कर कहा—

जातस्य मृत्युध्रुव एष सर्वतः
प्रतिक्रिया यस्य न चेह कल्पा।
लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं
को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम्॥
द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्
यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः॥
(भा० ६।१०।३२-३३)

इसमें सन्देह नहीं कि जो उत्पन्न हुआ है, उसे एक न एक दिन अवश्य ही मरना पड़ेगा। इस जगतमें विधाताने मृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं बतलाया है। ऐसी स्थितिमें यदि मृत्युके द्वारा स्वर्गादि लोक और सुयश भी मिल रहा हो, तो ऐसा कौन बुद्धिमान है, जो उत्तम मृत्युको न अपनायेगा? संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु परम दुर्लभ और श्रेष्ठ मानी गई है। एक तो योगी पुरुषका अपने प्राणोंको वशमें करके ब्रह्म-चिन्तनद्वारा शरीरका परित्याग और दूसरा युद्धभूमिमें सेनाके आगे बिना पीठ दिखाये जूझ मरना। तुम भाग्यसे प्राप्त ऐसे शुभ अवसरको क्यों हाथसे खो रहे हो?

असुर सेनाने भयभीत और अचेतावस्थाके कारण स्वामीके धर्मानुकूल वचनोंपर ध्यान नहीं दिया। तब वृत्रासुरने असुरोंकी सेनाको खदेड़कर और देवोंको रोककर कहा—हे देवो! कायर असुरोंपर छिपकर क्यों प्रहार कर रहे हो?

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि।
अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा॥
(भा० ६।११।५)

यदि तुम्हारे मनमें युद्ध करनेकी शक्ति और उत्साह है तथा जीवित रहकर विषय-सुख भोगनेकी लालसा नहीं है, तो क्षणभर मेरे सामने डट जाओ और युद्धका आनन्द चख लो।

वृत्रासुर बड़ा ही बली था। वह क्रोधमें भरकर शत्रु देवताओंको भयभीत करने लगा। उसके सिंहनादसे बहुतसे जन अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उन पर बिजली गिरी हो।

जैसे मदोन्मत्त गजराज नरकटका वन रौंद डालता है, वैसे ही रणबाँकुरे वृत्रासुर हाथमें त्रिशूल लेकर भयसे नेत्र बन्द किए पड़ी हुई देवसेनाको पैरोंसे कुचलने लगा। उसके वेगसे धरती डगमगाने लगी। वज्र-पाणि देवराज इन्द्र उसकी यह करतूत सहन न कर सके। जब वह उनकी ओर झपटा, तो उन्होंने और भी चिढ़कर अपने शत्रुपर बहुत बड़ी गदा चलायी। अभी वह असह्य गदा वृत्रासुरके पास पहुँची भी न थी कि उसने खेल ही खेलमें बाँये हाथसे उसे पकड़ लिया।

पराक्रमी वृत्रासुरने उसी गदासे क्रोधमें भरकर इन्द्रवाहन ऐरावतके सिरपर बड़े जोरसे गरजते हुए प्रहार किया। उसके इस

कार्यसे सभी प्रसन्न हुए । परन्तु वृत्रासुरकी गदाके आघातसे ऐरावत हाथी वज्राहत पर्वत के समान तिलमिला उठा और सिर फट जाने से व्याकुल हो गया । ऐरावतको मूर्च्छित देखकर इन्द्र भी विषादग्रस्त हो गए । वृत्रासुरने फिर गदा न चलाई क्योंकि वह धार्मिक युद्ध-विद्यामें प्रवीण था । कुछ समयके पश्चात् जब इन्द्रको सामने वृत्रासुरने आते देखा तो वह हँसता हुआ इन्द्रसे बोलने लगा—

आज मेरे लिये यह परम सौभाग्य का दिन है कि तुम्हारे जैसा शत्रु जिसने विश्वरूप के रूपमें ब्राह्मण, अपने गुरु एवं मेरे भाईकी हत्या की है, मेरे सामने खड़ा है । अरे दुष्ट ! अब शीघ्रसे शीघ्र मैं तेरे पत्थरके समान कठोर हृदयको अपने शूलसे विदीर्ण कर भाई के ऋणसे उऋण हो जाऊँगा और शान्तिका अनुभव करूँगा । यह मेरे लिए कैसे सौभाग्य की बात होगी !

इन्द्र ! तूने आत्मवेत्ता और निष्पाप मेरे बड़े भाईके, जो ब्राह्मण होनेके साथ ही यज्ञमें दीक्षित और तुम्हारा गुरु था, विश्वास दिला कर तीनों सिर उतार लिये ठीक वैसे ही जैसे स्वर्गकी कामनावाला निर्दय मनुष्य यज्ञमें पशुका सिर काट डालता है ।

दया, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्त्ति तुझे छोड़ चुकी है । तूने ऐसे ऐसे नीच कर्म किए हैं जिनकी निन्दा मनुष्योंकी तो बात ही क्या, राक्षस तक करते हैं । आज मेरे त्रिशूलसे तेरा शरीर टूक-टूक हो जायगा; बड़े कष्टसे तेरी मृत्यु होगी । तेरे जैसे पापीको आग भी नहीं जलायेगी, तुझे तो गीध नोच-नोच कर खा डालेंगे ।

इस प्रकार अत्यन्त कटु गर्वोक्तिसे भरे वाक्य प्रयोग करते हुए क्रोधावेशमें वृत्रासुर इन्द्रकी प्रताड़ना करता ही रहा । अन्तमें फिरसे कहने लगा—तू तो ठीक है, पर ये अज्ञानी देवता तेरे जैसे नीच और क्रूरके अनुयायी बनकर मुझपर शस्त्रोंका प्रहार कर रहे हैं । मैं त्रिशूलसे इनके सिर काट डालूँगा । इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि तू वज्रसे मेरा ही सिर काट ले । तो मैं अपने शरीरकी बलि पशुओंको तथा पक्षियों को समर्पित कर कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाऊँगा और महापुरुषोंके चरणरज का आश्रय ग्रहण करूँगा और जिस लोकमें महापुरुष जाते हैं, उसी लोकमें चला जाऊँगा ।

पूर्ण समाहित होकर महामनस्वीके समान फिर कहने लगा - हे देवराज इन्द्र ! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ । तेरे शत्रु मुझपर अपने अमोघ अस्त्र वज्रको क्यों नहीं छोड़ता ? तू यह सन्देह न कर कि जैसे तेरी गदा निष्फल हो गयी, वैसे कृपण पुरुषसे की गई याचनाके समान तेरा वज्र निष्फल जायगा । यह वज्र अमोघ है, क्योंकि—

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा
हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।
तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो
यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः ॥
अहं समाधाय मनो यथाऽऽह
संकर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।
त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो
गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥

(भा० ६।११।२०-२१)

हे इन्द्र ! तेरा यह वज्र श्रीहरिके तेज और दधीचि ऋषिकी तपस्यासे शक्तिमान् हो रहा है। विष्णु भगवान्‌ने मुझे मारनेके लिए तुझे आज्ञा दी है। इसलिए अब तू उसी वज्रसे मुझे मार डाल क्योंकि जिस पक्षमें भगवान् श्रीहरि हैं, उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निवास करते हैं।

भगवान् संकर्षणके आज्ञानुसार मैं अपने मनको उनके चरणकमलोंमें समर्पण कर दूँगा और तेरे वज्रका वेग मेरे विषय भोगके फंदेको काट देगा और शरीर त्याग कर मैं मुनिजनोचित गति प्राप्त करूँगा।

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां
याः सम्पदो दिवि भुवि रसायाम्।
न राति यद् द्वेष उद्वेग आधि-
र्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः॥
त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः॥
(भा० ६।११।२२-२३)

जो पुरुष भगवान्‌से अनन्य प्रेम करते हैं, उनके निजजन हैं, उन्हें भगवान् स्वर्ग, पृथ्वी या रसातलकी सम्पत्तियाँ नहीं देते। क्योंकि उनसे परमानन्दकी उपलब्धि तो होती ही नहीं; उन्हें द्वेष, उद्वेग, अभिमान, मानसिक पीड़ा, कलह, दुःख और परिश्रम ही हाथ लगते हैं। इन्द्र ! हमारे स्वामी अपने भक्त के अर्थ, धर्म एवं कामसम्बन्धी प्रयासको व्यर्थ कर दिया करते हैं और यथार्थमें इसीसे भगवान्‌की कृपा का अनुमान होता है। क्योंकि उनका ऐसा कृपा-प्रसाद अकिञ्चन भक्तोंके लिए ही अनुभवगम्य है, दूसरोंके लिए तो अत्यन्त दुर्लभ ही है।

ऐसा कहते-कहते महाभागवत वृत्रासुरने ध्यानावस्थित होकर सभी ओरसे अपने मनको हटा लिया और उसने ऐसा अनुभव किया कि भगवान् श्रीहरि प्रत्यक्ष रूपसे मेरे सामने उपस्थित हैं। वह भाव मग्न हो गया और युद्ध की सारी बातें भूल गया। यह प्रार्थना भक्तोंकी परमादरणीय एवं प्रीति-वर्द्धनकारी है—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥
(भा० ६।११।२४-२७)

हे प्रभु ! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे प्राप्त हो। हे प्राणवल्लभ ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करते रहे, मेरी

वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही लगे रहे ।

समग्र सौभाग्योंके आधारस्वरूप आपको छोड़कर मैं स्वर्गका राज्य, ब्रह्मलोक, पृथ्वी-तलका साम्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगसिद्धियाँ और अपुनर्भवरूप मोक्ष तक नहीं चाहता ।

जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँ की बाट देखते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ का दूध पीनेके लिए आतुर रहते हैं एवं जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिए उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शनके लिए छटपटा रहा है ।

प्रभो ! मैं मुक्ति नहीं चाहता । मेरे कार्योंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्रमें भटकना पड़े, इसकी परवाह नहीं; परन्तु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ-वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे मेरी प्रीति तथा मित्रता बनी रहे । स्वामिन् ! मैं केवल यही चाहता हूँ कि जो लोग आपकी मायासे देह-गेह और स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा कदापि किसी प्रकारका भी सम्बन्ध ही न रहे।

वृत्रासुर रणमें अपने शरीरका परित्याग कर भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिको ही *श्रेयस्कर मानता था न कि विजय प्राप्त कर* स्वर्ग । अतएव वह त्रिशूल लेकर इन्द्रकी ओर दौड़ा और कहने लगा—अब तू बच नहीं सकता । तब इन्द्रने आगे बढ़कर उसकी भुजा काट डाली । फिर वृत्रासुरने क्रोधाविष्ट हो परिघसे ऐसा प्रहार किया कि इन्द्रका वज्र उनके हाथसे गिर पड़ा । वृत्रासुरके इस अद्भुत कार्यसे देवता, असुर, चारण, सिद्ध सभी उसकी प्रशंसा करने लगे । पर इन्द्रके आये इस संकट पर देवता दुःखी हुए । इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र वृत्रासुरके समीप आकर गिरा था । अतएव वृत्रासुरने फिर कहा—इन्द्र वज्र उठाओ और मुझे मार डालो । सनातन पुरुष भगवान ही जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयके कारण हैं । उनके अतिरिक्त देहा-भिमानी कभी विजय प्राप्त करते हैं तो कभी पराजय । इसमें विचारकी कौन-सी बात है ! ये सब लोक और लोकपाल जालमें फँसे पक्षी के समान कालके अधीन हैं । वह काल ही सबकी जय-पराजय का मूल है ।

ओजः सहो बलं प्राणाममृतं मृत्युमेव च ।
तमजाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जड़म् ॥
यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥
पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ।
शक्नुवंत्यस्य सर्गादौ न बिना यदनुग्रहात् ॥
अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ॥
भूतः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥
आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिष पुरुषस्य याः ।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥

(भा० ६।१२।९-१३)

हे इन्द्र ! वही काल मनुष्यके मन, इन्द्रिय, शरीर, बल, प्राण, जीवन और मृत्युके रूपमें स्थित है । मनुष्य उसको नहीं जानकर जड़ शरीरको ही जय-पराजय आदि का कारण मानता है ।

जैसे काठकी पुतली और यन्त्रका मृग नृत्य करनेवालेके हाथमें होते हैं, वैसे ही तुम समस्त प्राणी भगवान्‌के अधीन हैं, ऐसा मानो।

भगवान्‌के कृपा-प्रसादके बिना पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पञ्चभूत, इंद्रियाँ और अन्तःकरण चतुष्टय—ये कोई भी इस विश्वकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ नहीं हैं। जिसे इस बातका पता नहीं है कि भगवान् ही सबका नियन्त्रण करते हैं, वही इन परतन्त्र जीवको स्वतन्त्र कर्ता-भोक्ता मान बैठता है। वस्तुतः भगवान् ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियों की रचना और उन्हींके द्वारा उनका संहार करते हैं।

जिस प्रकार इच्छा न रहने पर भी समय विपरीत होनेसे मनुष्यको मृत्यु और अपयश आदि प्राप्त होते हैं, वैसे ही समयकी अनुकूलता होनेपर इच्छा न करने पर भी उसे आयु, लक्ष्मी, यश और ऐश्वर्य आदि भोग भी मिल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त तुम्हें और भी हितकारी बातें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यानसे सुनकर मनन कीजिए—

तस्मादकीर्त्तियशसोर्जयपजययोरपि।
समः स्यात् सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा॥
सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते॥
पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे।
घटमानं यथाशक्ति तवप्राणजिहीर्षया॥
प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः।
अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः॥

(भा० ६।१२।१४-१७)

इसलिए यश-अपयश, जय-पराजय, सुख-दुःख, जीवन-मरण, इनमेंसे किसी एककी इच्छा न रखकर सभी परिस्थितियोंमें समभाव से रहना चाहिये। हर्ष-शोकके वशीभूत न होना चाहिए।

सत्व, रज, तम आदि गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं। अतएव जो पुरुष आत्माको उनका साक्षीमात्र जानता है, वह उनके गुण-दोषमें लिप्त नहीं होता।

देवराज इन्द्र! मुझे भी तो देखो! तुमने मेरा हाथ और शस्त्र काटकर मुझे एकप्रकार से पराजित कर दिया है। फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ।

यह युद्ध क्या है, एक प्रकारसे युद्ध-क्रीड़ा है। इसमें प्राणकी बाजी लगती है। बाणोंके पासे डाले जाते हैं और वाहन ही चौसर हैं। पहले से यह बात मालूम नहीं होता कि कौन जीतेगा या कौन हारेगा।

इस प्रकार वृत्रासुरके सारगर्भित, सत्य निष्कपट वचन सुनकर इन्द्रने उसका बड़ा आदर किया और वज्र उठा लिया। फिर मुस्कुराते हुए कहने लगे—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी।
भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम्॥
भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहनीम्।
यद् विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः॥
खल्विदं महदाश्चर्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव।
वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः॥
यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीड़तो मृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥

(भा० ६।१२।१९-२२)

अहो दानवराज ! सचमुच तुम सिद्धपुरुष हो। तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है कि तुमने समस्त प्राणियोंके सुहृद् आत्मस्वरूप जगदीश्वरकी [illegible]से भक्ति की है।

अवश्य ही तुम लोगोंको मोहित करने वाली भगवान्‌की मायाको पार कर गये हो, तभी तो असुरोचित भावको छोड़कर महापुरुष बन गये हो।

अवश्य ही यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम रजोगुणी प्रकृति के होने पर भी विशुद्धस्वरूप भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी बुद्धि दृढ़तासे लगी हुई है।

जो परम कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें प्रेममय भक्तिभाव रखता है, उसे जगत्‌के भोगोंकी क्या आवश्यकता है ? जो अमृतके सागरमें विहार कर रहा है, उसे क्षुद्र गड्ढोंके जलसे प्रयोजन ही क्या है ?

इस प्रकार योद्धाओंमें श्रेष्ठ पराक्रमी देवराज इन्द्र और महाभागवतवर वृत्रासुर धर्मतत्त्वको जाननेकी अभिलाषासे एक दूसरेसे बातचीत करते हुए फिर युद्धमें प्रवृत्त हुए।

वृत्रासुरने अतीव उत्साह और साहससे अपना परिघ चलाया। इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुर की भुजा काट डाली। उसकी दोनों भुजाओंके कट जानेसे रुधिरकी धारा बह चली।

फिर दीर्घकाय वृत्रासुर अपनी ठोड़ीको धरतीसे और ऊपरके ओष्ठको आकाशसे लगाकर ऐरावत हाथीके सहित इन्द्रको निगल गया। ऐसी स्थितिमें सर्वत्र हाहाकार मच गया और सभी विलाप करने लगे। इन्द्रने नारायण कवचसे अपनेको उसके उदर में सुरक्षित रक्खा। इससे ये उसके पेटमें पहुँचकर भी मरे नहीं। वे वज्रसे उसकी कोख फाड़कर बाहर निकल आये। अन्तमें एक वर्षमें वृत्रासुरके वधका योग आया। तब इन्द्रने तीव्र वेगशाली वज्रसे वृत्रासुरके सिरको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उस समय आकाशमें दुंदुभी बजने लगी और सबने स्तुति करते हुए इन्द्रपर पुष्प-वर्षा की।

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम।
पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत॥
(भा० ६।१२।३५)

श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्‌से कहा—हे राजन् ! इस प्रकार वृत्रासुरका वध होने पर उस महादैत्यके शरीरसे जीवरूप आत्मज्योति निष्क्रान्त होकर अर्थात् उसका पार्षद देह प्रकाशित होकर समस्त देवताओंके देखते देखते सर्वलोकातीत भगवान् संकर्षणको प्राप्त हुआ।

— बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

श्रीव्यास-पूजाका निमन्त्रण

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१४ जनवरी १९७२

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्त विद्याश्रितेषु—

आगामी १९ माघ, २ फरवरी, बुधवार, माघी कृष्णा तृतीयाको श्रीव्यासाभिन्न नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी **१०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी** आविर्भाव-तिथि और २१ माघ, ९ फरवरी, शुक्रवार, माघी कृष्णा पंचमीको, जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद **१०८ श्रीश्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** की आविर्भाव-तिथि—इन दोनों तिथियोंकी पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें विशेषकर मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीप, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ामें आगामी १९ माघसे २१ माघ—तीन दिनों तक **श्रीश्रीव्यास-पूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पंचक** अर्थात् श्रीकृष्ण-पंचक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरु-पंचक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रतिदिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्री हरिगुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बांधवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठान में योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासक्यानुगत्याभिलाषी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—बुधवारको श्री व्यास-पञ्चकादि, श्रील गुरुदेवके पादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राम प्रबन्ध-पाठ, भाषण। बृहस्पतिवारको श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन। शुक्रवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतमें श्री व्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति **श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ**

तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप,

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन— (नदिया)

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव-तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी ११ फाल्गुन, २४ फरवरी बृहस्पतिवार से १७ फाल्गुन, १ मार्च, बुधवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-कोसकी परिक्रमा** होगी। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे यात्रा कर संध्याको पुनः वहाँ पर लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्गको परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। १४ जनवरी १९७२।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—

"सभ्यवृन्द"

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिए अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।